|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

1/3 (श्लोक 1-9), रविवार, 19 मई 2024

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/KoC9-1ViP4I

आत्मज्ञान का गूढ़ रहस्य

दीप प्रज्वलन, गुरु वन्दना और श्री ज्ञानेश्वर महाराज के स्मरण के साथ आज के सत्र का आरम्भ हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता समराङ्गण में नर और नारायण के बीच हुआ पैंतालीस मिनट का एक संवाद है जो परम पाथेय प्रदान करने वाला अनुपम गीत है। इसे महर्षि वेदव्यास जी ने महाभारत के भीष्म पर्व में सम्पादित किया है। इसका प्रत्येक अध्याय जीवन को उन्नत करने वाला है।

नवम् अध्याय भगवद्गीता के मध्य में स्थित परम पवित्र और महत्त्वपूर्ण अध्याय है। इसमें स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने जीव, जगत और जगदीश के परस्पर सम्बन्ध का गूढ़ रहस्य बताया है।

यह सन्त ज्ञानेश्वर महाराज का अत्यन्त प्रिय अध्याय है। यह एक अनिर्वाच्य अध्याय है, सम्पूर्ण रहस्यों के साथ इसका वर्णन कोई भी नहीं कर पाया। गुरु की कृपा से ही श्री ज्ञानेश्वर महाराज इसका निरूपण कर सके। जीवन के बाईसवें वर्ष में उन्होंने सजीव समाधि ली। उस समय उनके बड़े भाई और गुरु श्री निवृत्ति महाराज ने श्रीमद्भगवद्गीता का नवम् अध्याय खोलकर उनके सामने रखा।

पूज्य गुरुदेव श्री गोविन्ददेव गिरि जी कहते हैं कि इस अध्याय को पढ़ने वाला "गतार्थ" हो जाता है, इसे ध्यान से पढ़ने पर सम्पूर्ण गीता सङ्क्रमित हो सकती है, शेष गीता जी को पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती। इस अध्याय के समापन में जो सिद्धान्त श्रीकृष्ण के श्रीमुख से निकला वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है। यह अध्याय ज्ञान, भक्ति और कर्मयोग का त्रिवेणी सङ्गम है।

योग का अर्थ है जुड़ना, परमात्मा के साथ जुड़ना।

ज्ञानयोग- तर्क से, बुद्धि से परमात्मा को जानने का प्रयास करना,

भक्तियोग- भक्ति और निष्काम भाव से परमात्मा से जुड़ना।

कर्मयोग- सभी कर्म भगवान को समर्पित करते हुए उनसे जुड़ना।

इन सिद्धान्तों को बताने वाला यह महत्त्वपूर्ण अध्याय है। सन्त ज्ञानेश्वर महाराज इस अध्याय का प्रारम्भ निरूपित करते हुए कहते हैं-

तरि अवधान एकवेळें दीजे, मग सर्व सुखासि पात्र होईजे।
हें प्रतिज्ञोत्तर माझें, उघड ऐका ॥ १ ॥

वे कहते हैं कृपया ध्यान दें, इस अध्याय को जो ध्यान से, पूरे मन से सुनेगा या सुनने का प्रयास भी करेगा वह सर्व सुखों का पात्र हो जाएगा। श्रोताओं का ध्यान गीता जी की ओर प्रेषित करना, अपने अन्तरङ्ग के तार गीता जी से जोड़ना, श्री ज्ञानेश्वर महाराज जी से ही सीखा जा सकता है।

श्रीमद्भगवद्गीता भौतिक उन्नति और आत्मशान्ति का पाथेय प्रदान करती है। भगवान श्रीकृष्ण ने सातवें अध्याय से ज्ञान बताना आरम्भ किया था, परन्तु आठवें अध्याय में वे अर्जुन की समस्याओं का समाधान करते हैं और नवें अध्याय में स्वयं अपने मन से ज्ञान की बातें प्रारम्भ करते हैं।

9.1

श्रीभगवानुवाच
इदं(न्) तु ते गुह्यतमं(म्), प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं(वँ) विज्ञानसहितं(यँ), यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥9.1॥

श्रीभगवान् बोले -- यह अत्यन्त गोपनीय विज्ञान सहित ज्ञान दोष दृष्टि रहित तेरे लिये तो (मैं फिर) अच्छी तरह से कहूँगा, जिसको जानकर (तू) अशुभ से अर्थात् जन्म-मरण रूप संसार से मुक्त हो जायगा।

विवेचन : श्रीकृष्ण ज्ञान और विज्ञान युक्त अत्यन्त गूढ़ रहस्य अर्जुन को बताना प्रारम्भ करते हैं। यह अध्याय **राजविद्याराजगुह्ययोग** कहलाता है।

गुह्यानां राजा = राज गुह्य
गुह्यानां विद्या = राज विद्या

अध्यात्म विद्या या स्वयं का ज्ञान अत्यन्त गोपनीय ज्ञान है। सम्पूर्ण सृष्टि का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु अध्यात्म ज्ञान प्राप्त करना कठिन है। स्वयं को जानना और सृष्टि और सृष्टिकर्ता के साथ हमारे सम्बन्ध का गूढ़ रहस्य श्रीकृष्ण अर्जुन को अच्छी तरह से बताना प्रारम्भ करते हैं। यह गूढ़तम रहस्य अपने ऐसे निकट सम्बन्धी को ही बताया जा सकता है जो उसका दुरुपयोग न करे।

अर्जुन अनसूय हैं अर्थात वे किसी में भी दोष नहीं देखते, यह अर्जुन का विलक्षण गुण है।

माता कुन्ती के कहने पर वे अपनी नवविवाहिता पत्नी को अपने भाइयों के साथ बाँट लेते हैं।

वे गुरु द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य और पितामह भीष्म के भी अत्यन्त प्रिय थे। उन्हें किसी से भी द्वेष नहीं था।

ज्ञानेश्वर महाराज ने श्रीकृष्ण और अर्जुन के सुन्दर प्रेम सम्बन्ध का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। गुरुदेव कहते हैं कि ऐसा वर्णन और कहीं नहीं मिलता।

तूं प्रेमाचा पुतळा, भक्तीचा जिव्हाळा।

मैत्रियेची चित्कळा, धनुर्धरा ॥ २९ ॥

यालागीं सुमनु आणि शुद्धमती, जो अनिंदकु अनन्यगती।
पैं गा गौप्यही परि तयाप्रती, चावळिजें सुखें ॥ ४० ॥

अर्जुन का हृदय प्रेम से सराबोर है, वे बहुत अच्छे मित्र हैं। हृदय में भक्ति भरे हुए वे वीर धनुर्धर हैं जिनका मन और बुद्धि शुद्ध है। वे किसी की निन्दा नहीं करते।

समर्पण का भाव कोई अर्जुन से सीखे। युद्ध प्रारम्भ होने से पहले अर्जुन और दुर्योधन दोनों ही भगवान श्रीकृष्ण से मिलने जाते हैं। दुर्योधन पहले पहुँचकर सोते हुए श्रीकृष्ण के सिरहाने बैठते हैं और अर्जुन भगवान के पैरों के पास। श्रीकृष्ण की नींद खुलने पर वे पैरों के पास बैठे अर्जुन को पहले देखते हैं और उन्हें अपनी शस्त्रों से सुसज्जित एक अक्षौहिणी सेना और निःशस्त्र स्वयं में एक को चुनने को कहते हैं। अर्जुन निःशस्त्र श्रीकृष्ण को अपने सारथी के रूप में चुनते हैं। अर्जुन के इन्हीं गुणों के कारण श्रीकृष्ण उन्हें ज्ञान के साथ विज्ञान का अत्यन्त गोपनीय रहस्य बताते हैं। ज्ञान और विज्ञान को विभिन्न रूप से समझा जा सकता है:-

ज्ञान theory है, तो विज्ञान practical

एक रसगुल्ला गोल, सफेद, मीठा और रसभरा होता है यह ज्ञान है जो सबको दिखता है, वह मीठा और रसभरा है यह तो खाने पर ही पता चलेगा, यह विज्ञान है।

ज्ञान सामान्य ज्ञान है और विज्ञान विशेष ज्ञान

सामान्य व्यक्ति के लिए फूल सुगन्धित और रङ्गीन होता है परन्तु वनस्पति विज्ञान का विद्यार्थी उस फूल का विश्लेषण करता है और उसका वर्गीकरण करता है।

ज्ञान यानी आत्मज्ञान और विज्ञान सृष्टि का ज्ञान

आत्मज्ञान भगवद्गीता का प्रिय विषय है। श्री ज्ञानेश्वर महाराज ज्ञान और विज्ञान का महत्त्व बताते हुए कहते हैं-

अर्जुना तया नांव ज्ञान। येर प्रपंचु हें विज्ञान।
तेथ सत्यबुद्धि तें अज्ञान। हेंही जाण ॥ ६ ॥

आजीविका के लिए आवश्यक ज्ञान, विज्ञान और स्वयं के उत्थान का ज्ञान आत्मज्ञान। मात्र उपजीविका के लिए ज्ञान प्राप्त करना, उसे ही सत्य समझना और आत्मज्ञान प्राप्त न करना अज्ञान है। जीवन में दोनों ही आवश्यक हैं, यह बात श्रीभगवान ने सातवें अध्याय में बताई है। आत्मज्ञान से दुःखों से मुक्त हो सकते हैं।

9.2

राजविद्या राजगुह्यं(म्), पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं(न्) धर्म्यं(म्), सुसुखं(ङ्) कर्तुमव्ययम्।।9.2।।

यह (विज्ञान सहित ज्ञान अर्थात् समग्र रूप) सम्पूर्ण विद्याओं का राजा (और) सम्पूर्ण गोपनीयों का राजा है। यह अति पवित्र (तथा) अतिश्रेष्ठ है (और) इसका फल भी प्रत्यक्ष है। यह धर्ममय है, अविनाशी है (और) करने में बहुत सुगम है अर्थात् इसको प्राप्त करना बहुत सुगम है।

विवेचन :

ऐसा कौन-सा ज्ञान है जो अत्यन्त रहस्यमय है?

यह आत्मज्ञान है जो हमारे जीवन में उजाला करेगा और हमारे दुःख दूर करेगा। सभी को सभी बातें नहीं बताई जातीं। योग्य व्यक्ति को ही रहस्य बताए जाते हैं।

श्रीकृष्ण रहस्य छिपाने में निपुण हैं।

दानवीर कर्ण को कुन्ती पुत्र होने का रहस्य श्रीकृष्ण तब बताते हैं जब महाभारत का युद्ध प्रारम्भ होने वाला था क्योंकि कर्ण ने गलत पक्ष का साथ दिया था।

इस श्लोक में श्रीकृष्ण आत्मज्ञान की स्तुति करते हैं। किसी भी बात की श्रेष्ठता जाने बिना उसमें रुचि नहीं आ सकती। भगवान श्रीकृष्ण इस ज्ञान को पवित्र ज्ञान कहते हैं, जो जीवन के दोषों को दूर करने वाला है। यह प्रश्न उठता है कि ऐसा गोपनीय रहस्य समझने में और जीवन में उतारने में कठिन होगा?

श्रीभगवान कहते हैं कि यह सुगम उत्तम और अनुभवगम्य है। भगवद्गीता को पढ़ते ही उसका प्रेम अन्तःकरण में भर जाता है तो अपने आप ही भगवान श्रीकृष्ण का प्रेम हममें प्रवाहित होने लगता है। जीवन शुद्ध होने लगता है।

यह ज्ञान नीतियुक्त है। क्या नैतिक बातें कठिन हो सकती हैं? किसी वस्तु को देखना और उसे अनुभव करना दो अलग-अलग बातें हैं। जैसे पेड़ा देखना और उसका स्वाद चखना। श्रीभगवान कहते हैं यह ज्ञान अत्यन्त सरल, आनन्दमयी और अव्यय है। इस प्रकार भगवान आत्मज्ञान की स्तुति करते हैं।

स्तुति दो प्रकार से की जाती है।

सकारात्मक शैली - किसी भी कार्य का लाभ बताकर, जैसे योगाभ्यास करने से शरीर को होने वाले लाभ बताकर।

नकारात्मक शैली- उसे न करने से होने वाली हानि बताकर।

सभी रहस्य पवित्र नहीं होते!
All the secrets are not sacred!

कुछ रहस्य रहस्य ही रहते हैं, उन्हें किसी से नहीं कहा जा सकता।
वेदों में श्रद्धा नहीं रखने वाले इस रहस्य को नहीं जान पाएँगे।

9.3

अश्रद्दधानाः(फ्) पुरुषा, धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां(न्) निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि।।9.3।।

हे परंतप! इस धर्म की महिमा पर श्रद्धा न रखने वाले मनुष्य मुझे प्राप्त न होकर मृत्युरूप संसार के मार्ग में लौटते रहते हैं अर्थात् बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं।

विवेचन : श्रीकृष्ण अर्जुन को परन्तप कहते हैं क्योंकि अर्जुन अपने गुणों से सबका अवसाद दूर करते थे परन्तु अभी अपना क्षत्रिय धर्म भुलाकर युद्ध न करने के भाव से वे श्रीकृष्ण को ताप दे रहे थे, चिन्तित कर रहे थे। अर्जुन का अवसाद दूर करना ही श्रीभगवान का प्रथम कर्त्तव्य हो गया था।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि व्यक्ति को धर्म में आस्था होनी चाहिए, विश्वास होना चाहिए।

परमाणु की रचना रदरफोर्ड ने बताई थी कि उसके केन्द्र में प्रोटोन और न्यूट्रॉन होते हैं तथा इलेक्ट्रॉन परिधि में घूमते रहते हैं। इस बात पर विश्वास करना आवश्यक है क्योंकि परमाणु दिखता नहीं है। वैज्ञानिकों ने इसी संरचना को आधार बनाकर कई नए आविष्कार किए।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं।

श्रद्धया सत्यमाप्यते, बुद्धि तर्क करती है और श्रद्धा से विश्वास होता है। श्रद्धा रहित व्यक्ति आत्मज्ञान का गूढ़ रहस्य नहीं जान पाएँगे, न ही सृष्टिकर्ता से अपना सम्बन्ध जोड़ पाएँगे।

मनुष्य योनि में ही यह योग सम्भव है।
अन्य योनियाँ भोग योनियाँ हैं।

यदि मनुष्य योनि में आत्मज्ञान प्राप्त नहीं किया तो यह कार्य अधूरा रह जाएगा। इसे पूर्ण करने के लिए बार-बार जन्म लेना पड़ेगा। मनुष्य सांसारिक बन्धनों में बन्ध जाता है।

संसरति इति संसारः
संसार निरन्तर परिवर्तित होता रहता है।

भूतकाल का शोक, वर्तमान काल का मोह और भविष्य काल की चिन्ता में हम उलझ जाते हैं और परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकते। कोरोना की महामारी में भगवद्गीता का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा तीव्रता से बढ़ी, जिसने हमारे जीवन का दृष्टिकोण ही बदल दिया। अगले श्लोक में भगवान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात बताते हैं।

9.4

मया ततमिदं(म्) सर्वं(ञ्), जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि, न चाहं(न्) तेष्ववस्थितः।।9.4।।

यह सब संसार मेरे निराकार स्वरूप से व्याप्त है। सम्पूर्ण प्राणी मुझ में स्थित हैं; परन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ तथा (वे) प्राणी (भी) मुझ में स्थित नहीं हैं - मेरे इस ईश्वर-सम्बन्धी योग (सामर्थ्य) को देख ! सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाला और प्राणियों का धारण, भरण-पोषण करने वाला मेरा स्वरूप उन प्राणियों में स्थित नहीं है। (9.4-9.5)

विवेचन : श्रीभगवान स्वयं का वर्णन करते हैं। वे अव्यक्त निराकार मूर्ति हैं और मानव साकार मूर्ति। सन्त तुकाराम साकार, निराकार परमात्मा को देख सकते थे। यह ज्ञान की पराकाष्ठा है।

सन्त तुकाराम कहते हैं-

सगुण निर्गुण दोन्हीं ज्याची अङ्गें,
तो आम्हां सङ्गें क्रीड़ा करी।

परमात्मा व्यापक हैं, सम्पूर्ण जगत में वे व्याप्त हैं परन्तु वे अणु से भी सूक्ष्म हैं।

अणुरणिया थो कड़ा, तुका आकाशा एवढा।

ज = जायते,
ग = गच्छति,
त = तिष्ठति,

जगत वह है, जिसकी उत्पत्ति, स्थिति और विलय हो और परमात्मा अव्यय, अविनाशी और अनुत्पन्न हैं।

जगत परमात्मा में व्याप्त है और सभी जीव उनमें विराजित हैं परन्तु भगवान उनमें नहीं हैं। जैसे सोने के गहनों के लिए सोना आवश्यक है, लेकिन सोने का अस्तित्व गहने नहीं है।

घड़ा मिट्टी से बनता है मिट्टी घड़े से नहीं।
जगत का अस्तित्व परमात्मा पर निर्भर है।
परमात्मा का अस्तित्व जगत पर नहीं।

जगद्गुरु आदि शङ्कराचार्य द्वारा रचित विष्णु षट्पदि स्तोत्र में यह बात प्रभाविकता से कही गई है-

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वं ।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ॥ ३॥
विष्णुषट्पदि

लहरें समुद्र से बनती हैं, लहरों से समुद्र नहीं बनता।

आदरणीय गुरुदेव श्री गोविन्ददेव गिरि जी कहते हैं, परमात्मा की सेवा कर रहे हैं, संसार के लिए नहीं, इन भावों से गीता पढ़ाना चाहिए। इस तरह हम मोह-माया से मोहित नहीं होंगे। विफलता मिलेगी, उनसे विचलित नहीं होना है।

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

कां बीजचि जाहलें तरु, अथवा भांगारचि अळंकारु।
तैसा मज एकाचा विस्तारु, तें हें जग ॥ ६५ ॥

जिस प्रकार बीज से वृक्ष बनता है और सोने से आभूषण, वैसे ही यह संसार परमात्मा से बना है।

पानी से झाग बनता है, झाग में पानी नहीं होता। प्यास बुझाने के लिए पानी ही चाहिए, झाग से प्यास नहीं बुझती।

9.5

न च मत्स्थानि भूतानि, पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो, ममात्मा भूतभावनः।।9.5।।

विवेचन:

जगत परमात्मा में है परन्तु परमात्मा जगत में नहीं हैं।

जड़ और चेतन के समागम से सृष्टि का कार्य चलता है।

जड़ अर्थात प्रकृति और चेतन अर्थात पुरुष।
चेतना की निर्मिति ही परमात्मा का प्रतिबिम्ब है।

चेतन या पुरुष का अस्तित्व जड़ या प्रकृति पर निर्भर नहीं होता। वेदान्त के अनुसार चेतन से जड़ का निर्माण होता है।

आधुनिक विज्ञान में-

जड़ = matter और चेतन = energy है।

अल्बर्ट आईन्सटीन ने इनका परस्पर सम्बन्ध बताया-

$e = mc^2$, जहाँ
e = energy, m = matter and
c = velocity of light

यहाँ जड़ से चेतन बनता है परन्तु law of conservation of energy कहता है-

energy can neither be created nor destroyed।
चैतन्य अव्यय है।
इसे न तो बनाया जा सकता है, न ही इसका नाश होता है।
मात्र इसका स्वरूप बदलता रहता है।

गुरुदेव कहते हैं, आज सारे वैज्ञानिक भी वेदान्तिक तथ्य की ओर आ रहे हैं। अव्ययी परमात्मा चैतन्य है जो इस जड़ जगत का अधिष्ठाता है।
समुद्र में उठती लहरें सागर का ही स्वरूप हैं, सागर से ही निर्मित हो कर उसी में विलीन हो जाती हैं, उनका अस्तित्व कुछ ही देर के लिए होता है। वैसे ही सभी जीव परमात्मा का स्वरूप हैं जिनमें परमात्मा स्वयं को प्रकट करते हैं।

परमात्मा से कोई भी, कभी भी, कहीं भी जुड़ सकता है।
इसे ऐश्वर्ययोग कहते हैं।

पृथ्वी को धारिणी कहते हैं क्योंकि वह अपनी गुरुत्वाकर्षण शक्ति से जीवों को धारण करती है। सूर्य के गुरुत्वाकर्षण से पृथ्वी और अन्य सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं और उनके साथ सूर्य परमात्मा की परिक्रमा करता है। ऐसे अनेकों ब्रह्माण्ड हैं जो भगवान के ऐश्वर्य योग के कारण एक दूसरे से बिना टकराए घूमते रहते हैं।

अभी हाल ही में NASA ने पृथ्वी जैसा एक अन्य ग्रह खोजा है जो अपने सूर्य की परिक्रमा दो दिन में करता है जबकि हमारी पृथ्वी को तीन सौ पैंसठ दिन लगते हैं।

मनुष्य विकारी है, काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मत्सर में फँसकर अविकारी भगवान को भूल जाते हैं। जब-जब यह पर्दा हटता है परमात्मा दिखाई देते हैं।

जव जव लपे, तव तव दिसे।

सन्त महात्माओं की दृष्टि अन्तरात्मा तक पहुँचती है और वे परमात्मा को समग्रता से जानते हैं। सन्त ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

कां पूर्ण कुंभ उलंडला, तेथ बिंबाकारु दिसे भ्रंशला।
परी भानु नाहीं नासला, तयासवें ॥ १४१ ॥

घड़े के पानी में सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखता है जो घड़े को उलट देने से नष्ट हो जाता है, परन्तु सूर्य तो वहीं रहता है उसको कुछ नहीं होता। ऐसे ही परमात्मा घट-घट वासी हैं, प्रत्येक जीव में हैं, जीव के जाने से परमात्मा तो रहते ही हैं, उनका कुछ नहीं बिगड़ता। हम ईश्वर में स्थित हैं यह हमारा दृष्टिकोण है परन्तु भूतमात्र ईश्वर से भिन्न नहीं है यह परमात्मा का दृष्टिकोण है।

सागर की लहर सागर में स्थित है, सागर का ही प्रतिरूप है, उसी से निर्मित है।

अब आगे भगवान एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात बताते हैं कि किस प्रकार यह सृष्टि उनमें स्थित है।

9.6

यथाकाशस्थितो नित्यं(वँ), वायुः(स्) सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि, मत्स्थानीत्युपधारय॥9.6॥

जैसे सब जगह विचरने वाली महान् वायु नित्य ही आकाश में स्थित रहती है, ऐसे ही सम्पूर्ण प्राणी मुझमें ही स्थित रहते हैं - ऐसा तुम मान लो।

विवेचन : सर्वत्र सञ्चार करने वाला वायु आकाश में स्थित होता है। जहाँ वायु है वहाँ आकाश है और जहाँ वायु नहीं है वहाँ भी आकाश तो है, जिसे अन्तरिक्ष कहते हैं। आकाश में बादल होते हैं, वर्षा होती है, सूर्योदय और सूर्यास्त के समय अनेक रङ्ग होते हैं लेकिन आकाश इन सबसे प्रभावित नहीं होता, वह अलिप्त है।

इसी प्रकार सभी भूत मात्र परमात्मा में स्थित हैं।
अविकारी, अविनाशी ईश्वर सृष्टि के क्रिया कलापों से अलिप्त है।

गुरुदेव श्री गोविन्ददेव गिरि जी कहते हैं कि हम श्रवण वेदान्त का करते हैं लेकिन चिन्तन संसार का, जिससे चिन्ता होती है। इसलिए-

चिन्तन अविकारी परमात्मा का करें और कार्य संसार का।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस अमेरिका में सनातन धर्म का प्रचार कर रहे थे। एक बार उनकी सभा में एक युवक प्रश्न करता है कि वह भगवान को नहीं मानता, भगवान कहीं भी नहीं हैं तो स्वामी जी उस युवक से वही बात लिखने को कहते हैं। वह लिखता है-

God is no where.

स्वामी जी उसी बात को लिखते हैं-

God is now here.

कहने का तात्पर्य है कि दृष्टिकोण बदलने से विचार बदलते हैं। सृष्टि का कार्य कैसे चलता है?

9.7

सर्वभूतानि कौन्तेय, प्रकृतिं(यँ) यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि, कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥9.7॥

हे कुन्तीनन्दन ! कल्पों का क्षय होने पर (महाप्रलय के समय) सम्पूर्ण प्राणी मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं (और) कल्पों के आदि में (महासर्ग के समय) मैं फिर उनकी रचना करता हूँ।

विवेचन : जब हम सोते हैं तो हमारे लिए इस संसार का कोई अस्तित्व नहीं होता और नींद खुलने पर हम फिर उसी संसार से जुड़ जाते हैं। ऐसे ही इस सृष्टि का निर्माण **महासर्ग, (**एक कल्प) अर्थात् ब्रह्मा जी के एक दिन में होता है और **महाप्रलय** अर्थात् ब्रह्मा जी की रात्रि को सृष्टि का विलय होता है।

एक चतुर्युगी = तियालीस लाख बीस हजार मनुष्य वर्ष

मन्वन्तर = इकहत्तर चतुर्युग

एक कल्प = चौदह मन्वन्तर, ब्रह्माजी का एक दिन।

इस प्रकार इस सृष्टि का अस्तित्व परमात्मा पर निर्भर करता है।

9.8

प्रकृतिं(म्) स्वामवष्टभ्य, विसृजामि पुनः(फ्) पुनः।
भूतग्राममिमं(ङ्) कृत्स्नम्, अवशं(म्) प्रकृतेर्वशात्।।9.8।।

प्रकृति के वश में होने से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण प्राणी समुदाय की (कल्पों के आदि में) मैं अपनी प्रकृति को वश में करके बार-बार रचना करता हूँ।

विवेचन : सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों से यह प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। जो इन तीन गुणों में बँध जाते हैं उन सभी का पुनः-पुनः जन्म होता रहता है।

परमात्मा गुणातीत हैं इसलिए प्रकृति के बन्धनों में नहीं बँधे हैं।

9.9

न च मां(न्) तानि कर्माणि, निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनम्, असक्तं(न्) तेषु कर्मसु।।9.9।।

हे धनञ्जय ! उन (सृष्टि-रचना आदि) कर्मों में अनासक्त और उदासीन की तरह रहते हुए मुझे वे कर्म नहीं बाँधते।

विवेचन : हे अर्जुन! सभी जीव अपने कर्मों के अनुसार भगवान की रची हुई इस सृष्टि में आने के लिए विवश हैं। गुणातीत परमात्मा को यह विवशता नहीं है, वे कर्मों से बँधे हुए नहीं होते क्योंकि वे उनसे आसक्त नहीं हैं।

कर्म के दो प्रकार के बन्धन हैं-

आजीविका के लिए नौकरी करना, किसी वृद्ध या बीमार की सुश्रुषा करना, यदि इन्हें बोझ समझकर किया जाएगा तो ये बन्धन हो जाते हैं। अर्जुन को इस समय युद्ध एक बन्धन लग रहा था।

कर्म में हम कर्तृत्व, भोक्तृत्व और फल चाहते हैं, मैंने जो किया उसके फल की अपेक्षा करना, अहङ्कृत भावना से कर्म करना है जिससे हम कर्म बन्धन में बँध जाते हैं।

भगवान अहङ्कृत भाव से कर्म नहीं करते और इसलिए उनके बन्धनों में नहीं बँधते।

वे तो गौएँ चराते हैं, बाँसुरी बजाते हैं, झूठी पत्तलें उठाते हैं, धर्म स्थापना के लिए युद्ध करते हैं और अर्जुन के सारथी बन कर उनके घोड़ों की देखभाल करते हुए अर्जुन का मार्गदर्शन भी करते हैं।

वे अपनी प्रत्येक भूमिका सहजता से निभाते हैं।
उनमें लिप्त नहीं होते।

परमात्मा को जानना ज्ञान है। स्वयं को परमात्मा में ढालने का प्रयास विज्ञान है।

उदासीन का अर्थ उदास होना नहीं है। दूर से तटस्थ होकर जीवन को देखना और निष्काम भाव से अपने कर्त्तव्य कर्म करते रहना है।

कर्म हमें बाँधते हैं, हम अपना पद, अपना स्थान छोड़ना नहीं चाहते। हमें लगता है कि हमारे बिना वह कार्य होगा ही नहीं लेकिन सृष्टि अपना कार्य करते हुए चलती रहती है।

भगवान की अध्यक्षता में सृष्टि का कार्य किस तरह चलता है, इसकी चर्चा आगामी सत्र में की जाएगी।

प्रश्नोत्तर -

प्रश्नकर्ता- ऋषिकेश नागलकर भैया
प्रश्न- आत्मा और परमात्मा, शून्य और अनन्त में क्या भेद है?
उत्तर- शून्य होने की अवधारणा और अनन्त होने की अवधारणा, दोनों समान ही हैं। इनमें भेद नहीं है। हम देह में हैं इसलिए केवल शून्य को जानना पर्याप्त नहीं है। शून्य के साथ अनन्त को जानकर ही समग्रता आती है। यह आत्मा से परमात्मा होना है। विपश्यना से शून्य में जा सकते हैं और उसी शून्य को अनन्तता से जोड़ लेना है। स्वयं का अस्तित्व शून्य करना है, उस अनन्त परमात्मा से जोड़ना है। यदि अनन्त से नहीं जुड़ेंगे और समाधि अवस्था से जब बाहर आएँगे, तब वह हमें परम आनन्ददायक नहीं लगेगा। शून्य से चिरस्थाई की ओर की यह यात्रा आनन्ददायी है इसलिए नर से नारायण की ओर अग्रसर होने का आनन्द श्रीमद्भगवद्गीता हमें प्रदान करती है।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु
विश्वतोऽदब्धासो अपरितासउद्भिदः।

हम नकारते नहीं हैं सकारात्मक ग्रहण करते हैं। जितने भी अच्छे विचार हैं, सनातन उन्हें ग्रहण करता है। विपश्यना आपको शून्य की ओर ले जाएगा, तो अनन्त का मार्ग भी वहीं से मिलेगा।

प्रश्नकर्ता- उर्मिला दीदी
प्रश्न- क्या कृष्णाय वासुदेवाय गीता जी का सार है?
उत्तर-

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नम:

यह श्रीमद्भगवद्गीता का सार नहीं कह सकते। यह श्रीकृष्ण जी की स्तुति है। उन्हें क्लेश का नाश करने वाला कहा गया है। सबको आकर्षित करने वाले गोविन्द का अर्थ है- जो इन्द्रियों के स्वामी हैं, उन्हें नमन करते हैं। इन्द्रियों के क्लेश, हमारे शरीर के क्लेश, वृद्धावस्था आदि के क्लेश दूर करने हेतु यह स्तुति की जाती है।

प्रश्नकर्ता- उर्मिला दीदी
प्रश्न- अगला जन्म हमें किस योनि में मिलेगा?
उत्तर- आठवें अध्याय में बताया है कि मृत्यु के समय जैसा ध्यान करते हैं उसी के अनुसार अगला जन्म होता है। हमारी जो साधना रही होती है, वैसे ही होता है। मनुष्य योनि में आकर हम अपनी बुद्धि का उन्नयन न करें, साधना न करें, तो हो सकता है कि नीच योनि प्राप्त हो। हमारी साधना यदि उच्च कोटि की है तो हमें फिर से मनुष्य जीवन साधना करने हेतु प्राप्त होता है।

प्रश्नकर्ता- कल्याणी दीदी।
प्रश्न- मनुष्य सांसारिक जुड़ाव से दूर कैसे हो सकते हैं?
उत्तर- हमारे पञ्चकोश हैं। अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश और आनन्दमयकोश। अन्नमयकोश सबमें है, पत्थर में भी है। वनस्पति में प्राणमयकोश भी है। पेड़-पौधे श्वसनक्रिया करते हैं। पशु पक्षियों में मनोमयकोश भी है। उनका मन भी कुछ करने या न करने को करता है। पुचकारने पर निकट आते हैं, डण्डा दिखने पर दूर भाग जाते हैं किन्तु पशु पक्षियों का मन अधिक विकसित नहीं है। मनुष्य का मन अत्यधिक विकसित है। उसमें सभी प्रकार के सुख-दुःख, अपना-पराया आदि मनोभाव निहित हैं

भगवान कहते हैं -

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥7:24॥

भावनाओं का अत्यधिक विस्तार होने के कारण मनुष्य अपनों के मोह में पड़ा रहता है। बुद्धि का विज्ञानमयकोश भी मनुष्य में अत्यधिक विकसित होता है। अन्य प्राणियों में विज्ञानमयकोश कम होता है, उनमें कम बुद्धि होती है। मनुष्य ने अपने विज्ञानमयकोश से ही विभिन्न अविष्कार किए हैं। उससे आगे आनन्दमयकोश है। ऋषि-मुनि, योगीजन, जहाँ दुःख का प्रवेश ही नहीं है, वह आनन्दमयकोश है। हम यह समझें कि किस प्रकार से आनन्दित होना है। जुड़ाव होने से हमें दुःख भोगना पड़ता है, यह सही है किन्तु हम किस प्रकार परमात्मा से जुड़ाव करें कि यह सांसारिक जुड़ाव अपने आप कम हो जाए, श्रीमद्भगवद्गीता यही सिखाती है।

प्रश्नकर्ता- श्री रामचन्द्र कुलकर्णी भैया।
प्रश्न- गीता में कर्म, भक्ति और ज्ञान किस क्रम में हैं?
उत्तर- श्रीमद्भगवद्गीता में पहले कर्मयोग, फिर भक्तियोग और फिर ज्ञानयोग कहा गया है। इनका व्यवस्था क्रम निश्चित ऐसा ही नहीं है। प्रसङ्ग के अनुरूप यह कुछ आगे-पीछे भी है।

षष्ठम् अध्याय तक कर्मयोग का वर्णन है। सप्तम् अध्याय से भक्तियोग का आरम्भ होता है।

भक्त की चार श्रेणियाँ यहाँ भगवान बताते हैं-

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥7:16॥

नवम् अध्याय में ज्ञान, भक्ति और कर्म की बातें हैं। यह तीनों योग एक दूसरे से गुँथे हुए हैं। जैसे पुष्प की पँखुडियों को यदि हम अलग-अलग करने लगें तो शेष कुछ नहीं बचेगा। क्रम व्यवस्थापन को बाध्यकारी नहीं बनाया जा सकता। स्वयं को उनके जैसा बनाने का प्रयास करना विज्ञान है।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||